शिवोपासक भगवान् परशुराम

त्रेता युग में पृथिवी का भार हरण करने के लिये परशुराम के रूप में भगवान् विष्णु ने अवतार लिया था। वे बड़े ही ओजस्वी एवं सर्वगुण-सम्पन्न थे। पिता की भक्ति उनसे बढ़कर और कहीं पायी ही नहीं जा सकती। पितृ-आज्ञा के पालन के लिये उन्होंने अपनी माता रेणुका तक का सिर काट लिया था। इसी भक्ति से प्रसन्न होकर उनके पिता महामुनि जमदग्नि ने उन्हें वर दिया था कि संसार का कोई भी राजा तुम्हें नहीं जीत सकेगा। पिता ने उन्हें अग्नि की ज्वाला के समान उद्दीप्त एक परशुनाम का अस्त्र भी दिया। इसी से वे परशुराम नाम से विख्यात हुए।

एक बार हैहय-कुल में उत्पन्न राजा सहस्त्रबाहु(सहस्त्रार्जुन) ने कामधेनु की लालच से परशुराम के पिता जमदग्नि का सिर काट लिया। अपने पिता का वध देखकर उन्होंने सहस्त्रार्जुन को मारने तथा पृथ्वी को 21 बार क्षत्रियहीन करने की प्रतिज्ञा कर ली। ब्रह्माजी ने परशुराम की प्रतिज्ञा सुन उनसे कहा कि तुम्हें अपनी कार्यसिद्धि के लिये बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। अत: तुम शिवलोक में जाओ और शंकरजी की शरण ग्रहण करो; क्योंकि भूतल पर बहुत से नरेश शंकर के भक्त हैं। जब वे शक्तिस्वरूपा पार्वती और शंकर के दिव्य कवच को धारण करके खड़े होंगे, तब महेश्वर की आज्ञा के बिना उन्हें मारने में कौन समर्थ हो सकता है? ब्रह्माजी ने आगे कहा कि जगदीश्वर शिव तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर के गुरु हैं। अत: मुझसे मन्त्र ग्रहण करना तुम्हारे लिये युक्त नहीं है। तुम शंकरजी से त्रैलोक्यविजय नामक कवच ग्रहण करके इक्कीस बार पृथ्वी को भूपरहित कर डालोगे। दानी शंकर तुम्हें दिव्य पाशुपतास्त्र प्रदान करेंगे। तदनन्तर ब्रह्माजी की बात सुनकर परशुरामजी शिवलोक को चले।[1]

भगवान् शिव से इच्छित वर पाकर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वे आँखें लाल कर गरजते हुए सहस्त्रार्जुन के समीप पहुँचे और उसके हजार बाहुओं को उसी प्रकार काट डाला, जिस प्रकार हाथी कमलवन में पहुँचकर हजारों कमल-नालों को एक क्षण में अनायास ही छिन्न-भिन्न कर डालता है। परशुराम ने संग्रामभूमि में उसे रथ से नीचे गिरा दिया। तदनन्तर उन्होंने इक्कीस बार भूमण्डल के समस्त क्षत्रियों का विनाश किया। यहाँतक कि पृथ्वी पर क्षत्रियों का कहीं नामतक नहीं रह गया। गर्भ में जो बालक रह गये थे, उन्हीं से फिर क्षत्रियों का वंश चला।

परशुरामजी को इन क्षत्रियों के वध करने का पाप लगा। उस पाप के प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ में सारी वसुन्धरा उन्होंने कश्यप ऋषि को दान में दे डाली और असंख्य ब्राह्मणों को हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी, सोना, चाँदी आदि दिया। यह सब करने पर भी

---

1. शिवलोक में पहुँच कर उन्होंने जो कुछ किया तथा जो कुछ पाया उसकी झलक इसी पुस्तक में 'परशुरामकृत शिवजी का स्तोत्र' शीर्षकवाले अध्याय में मिलेगी।

परशुरामजी को अनेक प्राणियों के वधजनित पाप से मुक्ति नहीं मिली। इससे वे रैवतक पर्वतपर गये और वहाँ बहुत समयतक उग्र तप करते रहे। कठिन तप करने पर भी हत्या से छुटकारा न मिलने पर परशुराम ने महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमालय आदि पवित्र पर्वतों की यात्रा की । तत्पश्चात् नर्मदा, यमुना, चन्द्रभागा, गङ्गा, इरावती, वितस्ता, चर्मण्वती, गोमती, गोदावरी आदि पुण्यसलिला नदियों में श्रद्धापूर्वक स्नान किया। इसी के साथ-साथ गया, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर, प्रभास आदि सभी तीर्थों का सेवन किया, पर हत्याजनित पाप से मुक्ति नहीं मिली।

अपने इस कठिन परिश्रम को निष्फल देखकर परशुरामजी अपने मन में सोचने लगे कि मैंने तीर्थों का सेवन किया, पवित्र नदियों के जल से अपने पापों को धोने का प्रयत्न किया, घोर तपस्या भी की, परन्तु मुझे हत्या से छुटकारा नहीं मिला। इससे ज्ञात होता है कि आजकल ये सब निःसत्त्व हो गये हैं। अतएव इनका सेवन करना व्यर्थ है। मैंने अपने शरीर को व्यर्थ ही कष्ट दिया। वे इस प्रकार दुःखित हो ही रहे थे कि इतने में देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे। उन्हें सादर अभिवादन कर परशुरामजी कहने लगे कि 'देवर्षे! पिता की आज्ञा से मैंने अपनी माता का वध किया और पिता के वध करनेवालों से बदला लेने के लिये भूमण्डल के समस्त क्षत्रियों का विनाश कर डाला। यह सब करने पर मुझे हत्याजनित पाप का भय हुआ, उसके निवारण के लिये मैंने अनेक तप और तीर्थ किये, पर अबतक किसी से मेरी हत्या का प्रायश्चित्त नहीं हुआ।'

नारदजी बोले कि "महाकालवन[1] में ब्रह्महत्याजनित पाप का निवारण करनेवाला सर्व-सिद्धि-दायक 'जटेश्वर' नामक शिवजी का एक महालिङ्ग है। परशुराम! तुम वहाँ शीघ्र जाओ और उनकी आराधना करो। उनके प्रसाद से तुम समस्त पापों से मुक्त हो जाओगे।"

नारदजी के उपदेशानुसार परशुरामजी उसी समय उनको प्रणाम कर सर्वकामना-परिपूरक पवित्र महाकालवन को चल दिये। वहाँ पहुँचकर चिरकालतक श्रीजटेश्वर महादेवजी की आराधना की। उनकी एकनिष्ठ आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने लिङ्ग से प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया। उनके परमानन्दप्रद दर्शन पाकर परशुराम जी मुग्ध हो गये और स्तुति करने लगे कि 'प्रभो! आप शरणागतवत्सल हैं, दीनजनों के हित करने के लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं। हे करुणावरुणालय! मैं इस समय हत्याजनित पाप से दबा जा रहा हूँ। इससे मेरा उद्धार कीजिये। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि आपके चरण-कमलों में मेरा अविचल एवं प्रगाढ़ प्रेम बना रहे।'

उनकी स्तुति से भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें हत्या के पाप से मुक्त कर दिया और कहा कि आज से इस लिङ्ग का नाम तुम्हारे ही नाम से विख्यात होगा। इसे लोग अब 'रामेश्वर'

---

1. महाकालवन, अवन्तिका(उज्जैन) को कहते हैं।

कहेंगे। जो लोग भक्तिपूर्वक रामेश्वरकी पूजा करेंगे, उनके जन्म-भर के पाप जल जायँगे। हजारों ब्रह्म-हत्याओं के भी पाप श्रीरामेश्वरजी के दर्शन करने से विनष्ट हो जायँगे। स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड(लिङ्गमाहात्म्य 29/47, 50) में इसका बड़ा माहात्म्य लिखा है।

भक्त्या ये पूजयिष्यन्ति देवं रामेश्वरं परम्।
आजन्मप्रभवं पापं तेषां नश्यति तत्क्षणात्।।
यच्चापि पातकं घोरं ब्रह्महत्यासहस्रकम्।
तत्पापं विलयं याति रामेश्वरसमर्चनात्।।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के 'शिवोपासनांक' तथा संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणांक पर आधारित है।)

✪✪✪✪✪✪✪

यश्च शास्त्रमतिक्रम्य स्वेच्छया चाहरेत्करम्।
सदा दण्डरुचिर्यश्च यो वा दण्डरुचिर्न हि।।
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते।
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः।।
अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाचौररूपिणम्।
आलस्योपहतो राजा व्यसनी नरकं व्रजेत्।।

(स्कन्दपुराण मा. कुमार. ख. 36/72-75)

अर्थात् जो राजा शास्त्रीय आज्ञा का उल्लंघन करके प्रजा से मनमाना कर लेता है, सदा दण्ड देने की ही रुचि रखता है अथवा जो अपराधी को भी दण्ड देने की रुचि नहीं रखता तथा जिसके राज्य में प्रजा घूस(रिश्वत) लेनेवाले अधिकारियों, सूदखोरों, चोर एवं तस्करों से पीड़ित होती है, वह नरक की आग में पकाया जाता है। जो चोरी से दूर रहनेवाले को चोर समझता है और वास्तवीक चोर को चोर नहीं मानता, वह आलस्य दोष से दूषित तथा दुर्व्यसनों में आसक्त राजा नरक में जाता है।